**ओ३म्**

**‘ईश्वर का विचित्र संसार’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

यह संसार किसने, क्यों, कब व किसके लिए बनाया, इसका उत्तर न तो आज के वैज्ञानिकों के पास है और न ही संसार के वेदतर किसी मत-मतान्तर के पास। इसका उत्तर वेद और वैदिक साहित्य में मिलता है जिसका ज्ञान ऋषि दयानन्द सरस्वती ने अपने उपदेशों व ग्रन्थों के माध्यम से ईसा की उन्नसीवीं शताब्दी के आठवें व नौवें दशकों में संसार को व मुख्यतः भारत के लोगों को कराया था। ऋषि दयानन्द का उत्तर किसी कल्पना व अनुमान पर आधारित नहीं है अपितु वह ईश्वरीय ज्ञान वेद और वेदानुकूल शास्त्रों सहित युक्ति व तर्कों के आधार पर भी पुष्ट है। इसके अनुसार यह संसार ईश्वर ने बनाया है। वेद और ऋषि दयानन्द के अनुसार ईश्वर सचिच्दानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है। ईश्वर सर्वज्ञ भी है। उसने सभी प्राणियों के शरीरों में विद्यमान जीवात्माओं के पूर्व जन्मों के कर्मों के फल प्रदान करने के लिए इस संसार को रचा है। सृष्टि की रचना ईश्वर ने कब की, इसका उत्तर भी वैदिक मत से मिलता है और वह अवधि 1 अरब 96 करोड़ 8 लाख 53 हजार 117 वर्ष है। इसको विस्तार से जानने के लिए वैदिक साहित्य को देखा जा सकता है। सृष्टि को ईश्वर ने क्यों बनाया? इसका उत्तर है जीवों को उनके कर्मानुसार फल प्रदान करने के लिए। इसी उत्तर में ईश्वर ने सृष्टि किसके लिए बनाई का उत्तर भी आ जाता है। ईश्वर ने यह सृष्टि जीवों के लिए ही उनके जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों के फलों का भोग कराने व नये कर्मों को करने का अवसर देकर उन्हें धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष की प्राप्ति कराने के लिए बनाई है। ईश्वर की इस व्यवस्था के अनुसार पुरानी जीवात्मायें मोक्ष की अवधि पूरी होने पर इस संसार में आती रहती हैं और इस संसार की जीवात्मायें वेदानुसार जीवन व्यतीत कर मुक्ति को प्राप्त होकर मोक्ष प्राप्त करती रहती है। यह जन्म व मोक्ष का चक्र ही इस सृष्टि की उत्पत्ति, क्यों व किसके लिए, का उत्तर है।

 ईश्वर ने यह संसार वेदानुसार जीवन व्यतीत करने के लिए बनाया था। विगत 1.96 अरब वर्षों के सृष्टिकाल में आज से लगभग 5 हजार वर्ष पूर्व महाभारत का युद्ध हुआ जिसके कारण देश से ज्ञान व विज्ञान नष्ट हो गया। सामाजिक व्यवस्थायें भी ध्वस्त हो गई। इसके परिणामस्वरूप भारत सहित सारे संसार में अज्ञानान्धर फैल गया। वेद विलुप्त हो गये। वेदों के विद्वान भी न रहे। वेदों का स्थान मत-मतान्तरों व उनके अविद्याजन्य ग्रन्थों ने ले लिया जो आज से कोई चार सौ, कोई लगभग चैदह सौ और एक मत लगभग दो हजार वर्ष पूर्व अस्तित्व में आया। इससे पूर्व भी लगभग 2,500 वर्ष पूर्व बौद्ध और जैन मत अस्तित्व में आ चुके थे। महाभारत काल के बाद क्योंकि देश व विश्व में अज्ञानान्धकार फैल गया था, अतः महाभारत काल के बाद फैले मतों में भी अज्ञान की मात्रा विद्यमान है। यह बात अलग है कि न तो मत-मतान्तरों के आचार्य अपनी अविद्या पर विचार करते हैं और न अन्यों के द्वारा कहने पर ही उस पर विचार कर उसका निराकरण करते हैं। यह भी ईश्वर के संसार की एक विचित्रता ही है। वेद सन्देश देते हैं कि सभी मतों व मनुष्यों को सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में तत्पर रहना चाहिये, परन्तु कोई भी मत, भारतीय व विदेशों में आविर्भूत, इस नियम का पालन करता हुआ दिखाई नहीं देता। सबका प्रयास यही दीखता है कि अपने अपने मत की अविद्या को तर्क व कुतर्क करके विद्या बताया जाये अथवा मौन रखा जाये। मत-मतान्तरों के अनुयायियों में इतनी विद्या नहीं होती कि वह अपने अपने मत की अविद्या व अज्ञान का विरोध करें। उन्हें मतों के आचार्य की सजा व अन्य प्रकार से अपने जीवन का खतरा होता है। इसी कारण यह अविद्या दूर होने के स्थान पर सर्वत्र विद्यमान है। यह बात तब है जब कि महर्षि दयानन्द ने पूर्वाग्रहों व पक्षपात से मुक्त होकर सभी मतों व उनके अनुयायियों के कल्याण के लिए उन मतों की अविद्या व गलत परम्पराओं का थोड़ा थोड़ा ज्ञान करा दिया था। आश्चर्य है कि बड़ी मूर्तिपूजा करने वाले छोटी मूर्ति पूजा करने वालों का विरोध करते हैं और उनके लिए अमानवीय दण्डों का प्रावधान भी करते हैं। यह प्रक्रिया समाप्त होकर मत-मतान्तरों द्वारा सत्य का ग्रहण होना सम्भव नहीं दीख रहा है।

संसार की इस विचित्रता को ईश्वर भी देख रहा है। वह भी चाहता है कि लोग ईश्वर प्रदत्त बुद्धि का प्रयोग कर अपनी अपनी अविद्या को दूर करें और उसके ज्ञान वेदों के आधार पर अपने अपने मतों का सुधार करें। ईश्वर ने जीव को स्वतन्त्र बनाया है। जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र है और फल भोगने में ईश्वर की व्यवस्था में परतन्त्र है। यदि ईश्वर जीवात्मा को किसी अच्छे कार्य के लिए बाध्य करे तो यह जीव की स्वतन्त्रता के अधिकार में बाधा होगी जिसे ईश्वर नहीं करता और इसी स्वतन्त्रता का दुरुपयोग कर जीव असत्य में प्रवृत्त हो गया है। आज स्थिति यह बन गई है कि मनुष्य ने ईश्वर के यथार्थ स्वरूप को भुलाकर उसका नकली वा अयथार्थ स्वरूप गढ़ लिया है। इसका कारण अविद्या ही है। इस अविद्याजन्य अयथार्थ स्वरूप को ही देश व संसार के लोग मान रहे हैं। आस्तिक लोगों के इन कल्पित कृत्यों से सन्तुष्ट संसार की एक बहुत बड़ी जनसंख्या असन्तुष्ट होकर नास्तिक हो गई है अर्थात् उसने ईश्वर के अस्तित्व, उसकी स्तुति, प्रार्थना व उपासना सहित कृत्रिम धर्म का भी त्याग कर दिया है। इसका यह पारिणाम हुआ है कि नास्तिक भी आज कर्मों की पवित्रता पर ध्यान नहीं देते और मांसाहार आदि नाना प्रकार के अनुचित कर्म करते रहते हैं जिनका परिणाम वा फल उन्हें ईश्वर की व्यवस्था से कालान्तर में नाना दुःखों के रूप में अवश्य मिलेगा।

 ईश्वर के संसार में सबसे बड़ी विचित्रता यह है कि सृष्टि के आरम्भ में प्रदत्त ईश्वरीय ज्ञान वेद के उपलब्ध होते हुए भी संसार के लोग उसे स्वीकार नहीं कर रहे हैं। वेदों को स्वीकार न करने का यह परिणाम हुआ है कि लोगों को अपने कर्तव्य व अकर्तव्यों का ज्ञान ही नहीं है। मनुष्य के कर्तव्यों वा अकर्तव्यों का विधान वेदों में है। महर्षि दयानन्द ने वेदों के अनुसार सभी गृहस्थ मनुष्यों व अन्यों के लिए वेदेां के आधार पर कर्तव्या-अकर्तव्यों का विधान पंचमहायज्ञविधि और संस्कार विधि आदि अपने अनेक ग्रन्थों में किया है। जब तक मनुष्य वेदों को भली प्रकार से स्वीकार नहीं करेंगे, उन्हें अपने यथार्थ कर्तव्यों का बोध नही हो सकता। इसका परिणाम यह होगा कि वेदविरुद्ध कर्म करने व सभी वेद विहित करणीय कर्मों को न करने के कारण उन्हें अपने कर्मों के अनुसार सुख-दुःख रूपी कर्मों के फलों को कालान्तर में भोगना होगा। कर्तव्य व अकर्तव्यों का ज्ञान न होने के कारण ही संसार के प्रायः सभी व अधिकांश मनुष्य दुःखी देखें जाते हैं। आज संसार में सर्वत्र अज्ञान, अविद्या, अशिक्षा, अन्याय, शोषण, मांसाहार, हिंसा, भ्रष्टाचार, खानपान के दोष, असमानता, छुआछूत, मूर्तिपूजा, जन्मना जााितवाद, निराकार ईश्वर की योग की रीति से उपासना न करना आदि अनेकानेक दोष देखने में आ रहें हैं। यत्र तत्र युद्ध भी हो रहे हैं। हर देश युद्ध की तैयारी कर रहा है। कोई देश दूसरे देश की भूमि हथियाने के षडयन्त्र कर रहा है तो कोई अन्यों का धर्म परिवर्तन कर अपने मत के अनुयायियों की संख्या में वृद्धि करने में सक्रिय है। यह सब विचित्रतायें ईश्वर के ससार में सर्वत्र देखने को मिल रही है।

 आज संसार में वैदिक व्यवस्था नहीं है। प्रकृति का अन्धाधुन्ध दोहन हो रहा है जिससे पर्यावरण की रक्षा खतरे में पड़ गई है। वायु प्रदुषण से नाना प्रकार के रोग हो रहे हैं। कैंसर, मधुमेह, उच्च रक्तचाप, मोटापा आदि अनेक रोगों के कारण मनुष्य अल्पायु का शिकार हो रहे हैं। यदि लोग वेदों को अपना लेते तो शुद्ध पर्यावरण होता, वायु शुद्ध होती, सर्वत्र एक समान पद्धति से ईश्वरोपासना व अग्निहोत्र यज्ञ से रोगों का नाश व सबको अच्छा स्वास्थ्य प्राप्त होता। लोग योगाभ्यास करके अपना जीवन तनावमुक्त कर दीर्घजीवी होते। संसार में हिंसा न होने से सर्वत्र खुशहाली का वातावरण होता। अकाल, सूखा, अतिवृद्धि, महामारी व भूकम्प आदि जैसी आपदायें न होती वा कम होती। वैदिक व्यवस्था का सर्वत्र प्रचलित न होना ही हमें ईश्वर के संसार की विचित्रतायें अनुभव होती हैं। हमें लगता है कि यदि संसार को दुःखों से मुक्त होकर सर्वत्र सुख व शान्ति की स्थापना करनी है तो मत-मतान्तरों व उनकी अविद्या को त्याग कर सत्य व वेद के मार्ग पर आना ही होगा। बिना इसके समस्त विचित्रतायें समाप्त होकर सर्वत्र समानता, एक मत, एक विचार, एक सुख-दुःख का होना सम्भव नहीं है। संसार के लोगों को महर्षि दयानन्द द्वारा विश्व शान्ति का जो मार्ग सत्यार्थप्रकाश और अन्य ग्रन्थों में सुझाया गया है, उसका अध्ययन कर उसे अपनाना चाहिये। इसी में सबका हित व कल्याण है। इससे ही संसार की सभी विचित्रतायें व अनिष्ट दूर होंगे। इसी के साथ इस लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**

**ओ३म्**

**‘ऋषि दयानन्द का सत्यार्थ प्रकाश बनाने का प्रयोजन’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

सत्यार्थ प्रकाश विश्व का वेद एवं वैदिक प्रमाणों से युक्त एक सुप्रसिद्ध सर्वोतोमहान **‘धर्म ग्रन्थ’** हैं जिसकी रचना वेदों के महान व मर्मज्ञ विद्वान ऋषि दयानन्द सरस्वती जी ने सन् 1875 में की थी। इस आदिम सत्यार्थप्रकाश का एक संशोधित और परिवर्धित नया संस्करण उन्होंने अपनी 30 अक्तूतबर, 1883 को मृत्यु से पूर्व लिखवा दिया था जो उनकी मृत्यु के बाद सन् 1884 में प्रकाशित हुआ। सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ वेदानुयायी आर्यसमाजियों का **‘‘धर्म ग्रन्थ”** है। किस प्रयोजन से ऋषि दयानन्द ने इस ग्रन्थ को लिखा था, इसका उत्तर उन्होंने सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ की अपनी भूमिका में स्वयं ही प्रस्तुत किया है जिसे हम यहां प्रस्तुत कर रहे हैं। वह लिखते हैं ‘मेरा इस ग्रन्थ को बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य सत्य अर्थ का प्रकाश करना है। अर्थात् जो सत्य है, उसको सत्य और जो मिथ्या है, उसको मिथ्या ही प्रतिपादित करना, सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है।

वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान में सत्य का प्रकाश किया जाय। किन्तु जो पदार्थ जैसा है, उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है।

जो मनुष्य पक्षपाती होता है, वह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है, इसलिये वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता।

इसलिये आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश वा लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित कर दें, पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें।

**मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।**

परन्तु, इस (सत्यार्थप्रकाश) ग्रन्थ में ऐसी (कोई) बात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना वा किसी की हानि पर तात्पर्य है।

किन्तु जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें। क्योंकि, सत्योपदेश के विना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।”

ऋषि दयानन्द ने ग्रन्थ रचने से पूर्व जिस प्रयोजन से इस ग्रन्थ का प्रणयन वा लेखन किया उसे भी संक्षेप में प्रस्तुत कर देते हैं। सत्यार्थप्रकाश की रचना से पूर्व जिन दिनों सन् 1874 में ऋषि दयानन्द काशी में वैदिकधर्म का प्रचार कर रहे थे तो वहां उनके उपदेशों में बड़ी संख्या में धर्मपिपासु-श्रद्धालु उपस्थित होते थे। इनमें से एक राजा जयकृष्ण दास जी भी थे। वह उन दिनों वहां डिप्टी कलेक्टर थे। सभी सज्जनों को ऋषि दयानन्द के उपदेश अपूर्व और महत्वपूर्ण लगते थे। राजा जयकृष्ण दास जी के मन में विचार आया कि ऋषि जो उपदेश करते हैं वह अतीव महत्वपूर्ण होते हैं। श्रोता उनके उपदेशों को सुनकर भावविभोर व मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। सुना हुआ पूरा उपदेश किसी को स्मरण नहीं रहता। सुनने के कुछ समय बाद ही उपदेश की बातें विस्मरित होनी आरम्भ हो जाती हैं जिनसे श्रोता बाद में लाभ नहीं उठा सकते। दूसरी महत्वपूर्ण बात यह भी थी स्वामी जी के उपदेशों से वही लोग लाभान्वित हो सकते थे वा होते थे जो उनके उपदेशों को आरम्भ से अन्त तक उपस्थित रहकर दत्तचित्त होकर सुनते थे। जो दूरी व व्यस्तताओं आदि अनेकानेक कारणों से उपदेश सुनने नहीं आ पाते थे, तो ऐसे सभी लोग उपदेशों के लाभ से वंचित रहा करते थे। इन सभी पक्षों पर विचार कर राजा जयकृष्ण दास जी को लगा कि यदि ऋषि दयानन्द अपने समस्त विचारों को लेखबद्ध करके एक ग्रन्थ की रचना कर दें तो उससे उपदेश सुनने वाले और न सुनने वाले दोनों वर्गों के श्रोता वा मनुष्य समान रूप से लाभान्वित हो सकते हैं। कालान्तर में भी उनका लाभ मिलता रहेगा। अतः यह निश्चय कर राजा जयकृष्ण दास जी ने एक दिन स्वामी जी के सम्मुख अपने विचारों का एक ग्रन्थ लिखने का प्रस्ताव वा सुझाव दिया। स्वामी जी ने विचार किया और प्रस्ताव के महत्व को पूर्णतया समझकर तत्काल अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी। इसी वार्तालाप व सुझाव का परिणाम सत्यार्थप्रकाश की रचना का प्रमुख कारण बना। यह ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश का प्रथम संस्करण कहलाता है जिसे आदिम सत्यार्थप्रकाश भी कहते हैं। महर्षि दयानन्द ने इस ग्रन्थ को कुछ पण्डितों को बोलकर लिखवाया था। लेखक व प्रैस के व्यक्तियों आदि के प्रमाद के कारण प्रथम संस्करण में कुछ त्रुटियों रह गईं व लेखक व प्रैस के लोगों ने जानबूझकर कर दी जिनका सुधार करने के लिए ऋषि दयानन्द ने इसका सुधार कर इसका एक संशोधित व परिवर्धित संस्करण तैयार किया जो सत्यार्थप्रकाश का द्वितीय संस्करण कहलाता है। आज यही संस्करण आर्यसमाजों में व सर्वत्र प्रचलित है।

प्रत्येक आर्यसमाजी व्यक्ति ने सत्यार्थप्रकाश की भूमिका से उद्धृत उपर्युक्त पंक्तियों को कई कई बार पढ़ा है। हमें भी लगभग यह पंक्तियां स्मरण हैं। इस पर भी हम इन पर कुछ विचार प्रस्तुत कर रहे हैं। सत्यार्थप्रकाश का प्रयोजन बताते हुए ऋषि दयानन्द ने पहली बात यह कही है कि उनका इस ग्रन्थ को बनाने का मुख्य प्रयोजन धर्म व उसके अनुरूप आचरण विषयक सत्य सत्य बातों को प्रस्तुत करना है। उन्होंने ऐसा इस लिये लिखा कि उनके समय में किसी भी धर्म व मत-पन्थ के ग्रन्थ में सभी बातें व वचन सत्य-सत्य अर्थात् पूर्णरुपेण सत्य नहीं थे। सभी ग्रन्थों में कुछ बातें सत्य थी तथा कुछ ऐसी भी थीं जो सत्य नहीं थीं। अतः एक ऐसे धर्मग्रन्थ की आवश्यकता थी कि जिसकी सभी बातें सत्य-सत्य हों। यही प्रयोजन सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ के लेखन का था जिसे ऋषि दयानन्द ने उपर्युक्त पंक्तियों में प्रस्तुत किया है। ऋषि दयानन्द ने यहां एक महत्वपूर्ण बात यह भी कही है कि सत्य को सत्य और मिथ्या को मिथ्या कहना व लिखना ही सत्य अर्थ का प्रकाश होता है और वह यही कार्य सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ को लिख कर रहे हैं। यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि ऋषि इस कार्य के सर्वथा योग्य थे। उन्होंने 18 वर्ष की आयु में अपने पिता का गृह त्याग कर देश के एक एक धर्म ज्ञानी पुरुष को ढूंढ कर उसके पास उपलब्ध ज्ञान को उससे प्राप्त किया था। उन्होंने योग की वह साधनायें की थी जिसमें संसार के लोगों का प्रायः मन लगता ही नहीं है। इन सब साधनों को सफलतापूर्वक करके वह यह जान सके थे कि सत्य और मिथ्या का अन्तर क्या होता है और धर्म पुस्तकों में असत्य अर्थात् मिथ्या कहां कहां व कितना व किस रूप में है। असत्य वा मिथ्या को दूर करने के उद्देश्य से ही वह सत्यार्थप्रकाश के लेखन में तत्पर हुए थे। स्वामी जी ने अपने वचनों में एक महत्वपूर्ण बात यह भी बतायी है कि सत्य के स्थान पर असत्य और असत्य के स्थान पर सत्य का प्रकाश करना सत्य नहीं कहलाता। यह बात भी आज सभी मतों में प्रचलित दिखाई देती है। इसी क्रम में स्वामीजी ने यह भी स्पष्ट किया है कि जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही, उसके किंचितमात्र भी विपरीत नहीं, मन, वचन व कर्म से मानना तथा लेखन व उपदेश द्वारा निरुपित व प्रस्तुत करना ही सत्य कहलाता है। स्वामी जी का यह भी मानना है कि पक्षपाती व्यक्ति कभी सत्य को प्राप्त नहीं हो सकता। इसके लिए पक्षपात से मुक्त होना आवश्यक है। आप स्वयं विचार कर देखिये कि सभी मतों में क्या निष्पक्ष विद्वान हैं? यदि है तो वह वेदों का अध्ययन क्यों नहीं करते और वैदिक मान्यताओं से अपने मत की मान्यताओं से तुलना क्यों नहीं करते। इसका उत्तर यही है कि वह पक्षपात रूपी दोष से युक्त हैं अतः उनका सत्य को प्राप्त करना असम्भव ही है।

इसके पश्चात स्वामी जी आप्त लोगों का कर्तव्य बताते हैं कि वह लेख व उपदेश द्वारा सत्य व असत्य का स्वरूप सभी लोगों के सम्मुख प्रस्तुत कर दें। यहां भी यह प्रश्न है कि क्या आप्त पुरुष किंवा पूर्ण विद्वान अन्य मतों में है। आप्त पुरुष उस मनुष्य को कहते हैं कि जो वेदों का अनिवार्यतः विद्वान हो और सत्य वा असत्य को पूर्णतः जानता हो। हमें लगता है कि ऐसे मनुष्य वेदेतर किसी मत में मिलना कठिन है। फिर भी जो मनुष्य जिन मतों के विद्वान हैं वह यदि निष्पक्ष होकर बिना किसी भय व लोभ के सत्य का स्वरूप अपने अपने समाज में प्रस्तुत करें तो इससे भी लोगों को कुछ लाभ हो सकता है। हमारी दृष्टि मंे आप्त मनुष्यों में हम ऋषि दयानन्द व उनके बाद उनके कुछ अनुयायी वैदिक विद्वानों को ले सकते हैं। शुद्ध शाकाहारी, योगाभ्यासी व ईश्वरोपासक विद्वान मनुष्य जो वैदिक साहित्य के स्वाध्याय में संलग्न रहता है, उसे ही आप्त व उसके समान मान सकते हैं। ऐसे विद्वान संसार में बहुत कम हैं। सभी मतों के अनुयायियों का भी कर्तव्य है कि वह पक्षपातरहित विद्वानों की संगति करें और अपना हिताहित समझकर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। आगे ऋषि कहते हैं **‘मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है।’** ऋषि के इन शब्दों को हम विश्व इतिहास में स्वर्णाक्षर कह सकते हैं। इसमें अविद्या की चर्चा है। अविद्या बिना वेदाध्ययन किए व वेदों के मर्म को जाने दूर नहीं होती। अतः वेदेतर मतों के विद्वानों वा अनुयायियों को यह स्थिति प्राप्त करना हमें संभव नहीं लगता। जब तक वह विधिवत वेदाध्ययन नहीं करेंगे, तब तक वह अपनी अपनी आत्माओं को सत्यासत्य का जानने वाला होने पर भी ऐसा नहीं बना सकते क्योंकि बिना ऐसा किये उनकी अविद्या दूर नहीं हो सकती। इसके साथ ही स्वार्थ, हठ व दुराग्रह छोड़ना भी आसान काम नहीं है। स्वामीजी ने स्पष्ट किया है उनके ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में अविद्यादि दोष नहीं हैं। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि उनका उद्देश्य किसी मतानुयायी वा मनुष्य का मन दुःखाना नही है और न किसी की हानि करना है। अन्त में स्वामीजी ने सर्वत्र दुर्लभ किन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात यह कही है कि **‘जिससे मनुष्य जाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्योंकि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।’** इसी सत्योपदेश व सत्य को स्वीकार करने के प्रयोजन को पूरा करने अर्थात् मनुष्य जाति की सार्वत्रिक उन्नति के लिए ही महर्षि दयानन्द सत्यार्थप्रकाश के लेखन सहित वेदों के प्रचार में प्रवृत्त हुए थे। यह दुःख की बात है कि अपने अपने स्वार्थों व किंचित अज्ञान के कारण भिन्न-भिन्न मतों के अनुयायियों व विद्वानों ने उनके सदाशयों, उद्देश्यों व कल्याणीकारी कार्यों को जानने व समझने में भूल की है। इस कारण विश्व के मनुष्यों को जो लाभ मिलना था वह उससे वंचित हो गये। भविष्य में भी कोई सम्भावना नहीं है।

वेदों की आज्ञा है कि संसार को श्रेष्ठ विचारों व आचरणों वाला बनाओं। इसके लिए सभी मनुष्यों को वेदों व वैदिक मान्यताओं का ज्ञानी बनाना होगा। इन सब के लिए सभी मनुष्यों को असत्य से हटाकर सत्य पर आरूढ़ भी करना होगा। यही सत्यार्थप्रकाश का मुख्य उद्देश्य है जिसके लिए वह इस ग्रन्थ के लेखन व सद्धर्म के प्रचार में ऋषि दयानन्द प्रवृत्त हुए थे। इसी के साथ लेख को विराम देते हैं। ओ३म् शम्।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**